भक्त हृदय के उद्‌गार

इक दिन इक छोटी सी पैंसिल,
कवि के हाथ लगी।

कवि ने पैंसिल लेकर कर में,
लम्बी काव्य लिखी।।

पैंसिल को अभिमान हुआ,
हाय मैं कवि बनी।

यह सुनकर मैं मुसकाई,
पर जल्द गम्भीर हुई।।

मैं भी तो इक पैंसिल थी,
हर क्षण अभिमानी हुई।

दिल को ऐसी ठेस लगी,
दुनिया ही बदल गई।।

- परम पूज्य माँ
प्रार्थना शास्त्र 1/11
4.12.1958

अनुक्रमणिका

1. भक्त हृदय के उद्‌गार..
इक दिन इक छोटी सी पैंसिल..

3. *..उपासना राही शास्त्रों में खोज!*
डॉ. जे.के. महता

9. पूर्व ही निश्चित हो चुका, वह ही सामने आयेगा..!
मुण्डकोपनिषद्, द्वितीय मुण्डक 2/8

14. अध्यात्म की रीत
श्रीमती सत्या महता

16. अपनी चाहना और संग की आहुति देना ही यज्ञ है!
अर्पणा प्रकाशन - श्रीमद्भगवद्गीता - 'भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन' 3/11-13

22. शुद्ध बुद्धि
परम पूज्य माँ से पिताजी के प्रश्नोत्तर

27. अहम् की मैली व पैबंद भरी चादर को उतार कर..
आप राम नाम की चादर ओढ़ा देते हैं!
श्रीमती पम्मी महता

30. प्रारब्ध वेग- 'बहु खड्‌ग काल जो लाया था, त्रिशूल ही वहाँ रह गया..'
प्रस्तुति - विष्णु प्रिया महता

34. यज्ञमय कर्म
श्रीमती शीला कपूर

37. अर्पणा समाचार पत्र

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविन्द से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं; जिसे सुश्री छोटे माँ ने लेखनीबद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल,
132 037, हरियाणा भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल 132 037 01, हरियाणा द्वारा दिसम्बर 2024 को प्रकाशित

...उपासना राही शास्त्रों में खोज!

डॉ. जे. के. महता

महाभारत युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर राजसिंहासन पर बैठे.. भगवान श्रीकृष्ण ने आगंतुकों के चरण पखारने का कार्य लिया..

(पूर्वांक से आगे)

संन्यास बुद्धि स्तर पर होता है। अपनी मान्यता से संग का त्याग ही संन्यास है। गीता में भगवान ने कहा है :

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी व योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।

श्रीमद्भगवद्गीता- 6/1

अर्थात्- *कर्मफल का आश्रय न लेकर जो करने योग्य कर्म करता है, वही संन्यासी है, वही योगी है। वह नहीं, जो अग्नि का त्याग कर देता है या कर्मों का त्याग करता है।*

पूज्य माँ ने बताया कि भगवान कृष्ण ने तो राज-पाट नहीं छोड़ा, युद्ध रूपा कर्म भी किये। अपना कुल परिवार भी पाला, पर वह संन्यासी थे।

पूज्य माँ ने संन्यास, वैराग्य और त्याग का अर्थ भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन को देखकर और उनके वाक् सुनकर समझा और अपने जीवन में उतारा। इसीलिए उनके राही अनुभवी का ज्ञान बहा।

पूज्य माँ कहते हैं कि वस्तु त्याग तो त्याग नहीं है। विपरीतता आ जाने पर अपनों का त्याग अथवा उनके प्रति अपने कर्तव्य का त्याग, त्याग नहीं है।

श्रीमद्भवद्गीता में भगवान का मुख्य आदेश तो कर्तव्य का पालन करना है। उन्होंने तो कहा है कि कर्म तो मुनिजन को भी पावन करते हैं। केवल कर्मफल में आसक्ति का त्याग करके कर्तव्य कर्म का निभाव ही वास्तविक त्याग है।

पूज्य माँ कहते हैं, "दूसरों पर अपने हक छोड़ दो, परन्तु अपने पर उनके हक से आप इन्कार नहीं कर सकते।" इसी प्रकार वैराग्य की व्याख्या करते हुए माँ ने समझाया कि अपने मन की रुचि और चाहना का त्याग ही वैराग्य है। हमारा जो इनमें राग है, वहाँ इनके प्रति वैराग्य उत्पन्न होने से हमारी अरुचिकर परिस्थिति में कर्तव्य पलायनता उत्पन्न नहीं होगी। जहाँ से हमें कुछ भी नहीं मिलना, उनके प्रति धर्मपरायण होकर उनके हित अर्थ कर्तव्य का पालन ही वैराग्य का चिन्ह है।

फिर श्रीमद्भगवद्गीता में मानने वाले, अपने घर-बार और कर्तव्य का त्याग करके गेरुए वस्त्र पहन कर, उसे ही संन्यास क्यों मानने लगे? मैं भी, जो गीता ज्ञान को ही सत् मानता हूँ, इसी प्रचलित संन्यास की मान्यता को ही सत्य मान रहा था। मेरी ग़लती यहीं हो रही थी। पूज्य माँ ने भगवान के हर वाक् का अर्थ उनके जीवन के दर्शन राही ग्रहण किया।

भगवान कृष्ण ख़ुद गृहस्थ थे, पर पूर्ण संन्यासी थे। माँ ने स्वयं भगवान कृष्ण के जीवन का अनुसरण करके संन्यास की व्याख्या को सिद्ध किया।

इसी प्रकार भगवान राम के लिये राजगद्दी पर बैठ कर राज्य करना और जंगलों में भटकना एक समान था। घर में माता पिता के प्रति अपना कर्तव्य निभाया और वनों में राक्षस और असुरों के वध राही अपने कर्तव्य का पालन किया, इस कारण वह संन्यासी थे।

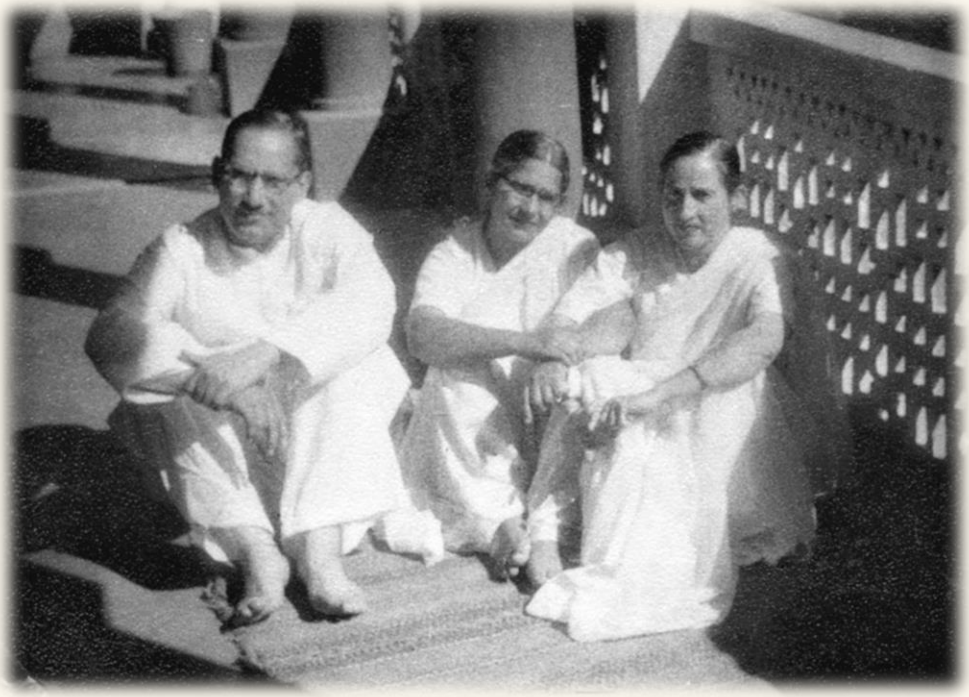

ऋषिकेश में परम पूज्य माँ के साथ डॉ. जे. के. महता एवं उनकी पत्नी श्रीमती सत्या महता

पूज्य माँ ने मुझे अपने कुल - परिवार का त्याग करने से रोका और मेरे बच्चे और पत्नी भी मेरे साथ ही आ गये। मैं, जो अपनी समाज सेवा छोड़ कर भगवान को प्राप्त करने के अभिप्राय से उनके पास आया था.. मुझे पुनः माँ ने उसमें लगाया। मैं जिस कार्य को निष्काम सेवा समझ कर करता था जिसके परिणामस्वरूप मुझे समाज से बहुत मान प्रतिष्ठा और प्रेम मिल रहा था। मैं समझ रहा था मैं वही कर रहा हूँ जो भगवान ने गीता में कहा है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 2/47

अर्थात्- *कर्म में ही तेरा अधिकार है, फल में अधिकार नहीं है तुम्हारा! कर्मफल हेतु कर्म न करो, अकर्म में भी तेरा संग नहीं होना चाहिये।*

परन्तु इसमें अहंकार को जो पुष्टि मिल रही थी, जिसके कारण निष्काम कर्म पुष्टि को न पाकर थोड़ी सी विपरीतता मिलने पर पतन को प्राप्त हो रहे थे, यह तो मुझे दीखता ही नहीं था। पूज्य माँ ने स्वयं

आश्रम के आसपास रह रहे ग्रामीण भाई-बन्धुओं की सेवा करते हुए मुझसे भी सेवा करवाई और मुझे सच्ची निष्काम सेवा सिखाई। जब ऐसे निष्काम कर्म करने वालों का एक छोटा सा समुदाय तैयार हो गया तब ही अर्पणा की यह निष्काम सेवा की प्रणाली आरम्भ हुई और आज यह नित्य विस्तार को पा रही है।

अर्पणा के प्रकाशन

इस निष्काम सेवा में अपने जीवन का अर्पण करना, वहाँ निरहंकार और निःसंगता का अभ्यास करना ही कर्मफल त्याग का अभ्यास है जो अन्त में साधक को संन्यास और योग की तरफ ले जाता है। पूज्य माँ कहते हैं, भगवान की कथनी के अनुसार कर्म करने से ही सच्चा ज्ञान, यानि शास्त्र का सही अर्थ बुद्धि में प्रकट होता है। यही अनुभवी का ज्ञान है।

इसी प्रकार गीता में भगवान ने दान, तप और यज्ञ को पावनकर कहा है :

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 18/5

अर्थात्- *यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्य करने चाहियें, क्योंकि यज्ञ, दान और तप, ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरुषों को भी पवित्र करने वाले हैं।*

दान का अर्थ बताते हुए पूज्य माँ ने कहा है कि दूसरों की सेवा अर्थ अपने आपको दूसरे को दे देना ही सच्चा दान है। दूसरों के कष्ट, क्लेश के निवारणार्थ उनके हित में सुखकर कर्म करते हुए, उनमें श्रद्धा और प्रेम का भरना ही दान है। यदि इसके परिणाम में हमें अपने लिये कुछ भी चाहिये, यानि दूसरा मेरा बन जाये या वहाँ से मुझे मान मिले, यदि ऐसी चाहना हो, तो वह दान नहीं, व्यापार कहलाता है.. अपावनता बढ़ाता है और मन में राग और द्वेष उत्पन्न करता है।

तप की व्याख्या करते हुए माँ ने भगवान के वाक् की याद दिलाई। भगवान 3/25 में कहते हैं कि वह दूसरे के स्तर पर जाकर उसकी बुद्धि को विचलित किये बिना उसके तदरूप हो कर स्वयं कर्म

करते हुए उस से कर्म करवाते हैं और कई बार मूर्खों में मूर्ख से दीखते हैं। उनका अपने प्रति यह मौन ही तप है। दूसरा अपनी मान्यता से बँधा है। उसके ही हित में काज करते हुए आप पर वह कई बार संशय करेगा और हो सकता है आप पर प्रहार भी करे.. परन्तु आप अपने प्रति मौन रहते हुए उसके सुख और कल्याणहेतु कर्म करते जायें, यही वह तप है जो चित्त को पावन कर देता है।

दान और तप का अभ्यास करते हुए दूसरे में खो जाना, अपने आपको पूर्णरूपेण भूल जाना, इसी को माँ ने यज्ञ बताया। इसी से तो अपने अहंकार का नितांत अभाव होता है।

गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा :

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 12/2

अर्थात् : *मुझमें मन लगाकर, जो नित्य मुझमें युक्त हुए, परम श्रद्धा से मुझे उपासते हैं, वह मेरे में युक्त गुणों में सर्वोत्तम योगी हैं।*

भगवान तो साधारण तनधारी रूप में अर्जुन के सारथी थे। वह कह रहे हैं, श्रद्धा से मुझ में मन लगा कर निरन्तर मेरी उपासना कर, यही उत्तम योग है। उपासना का अर्थ है पास बैठना। यानि मुझ को दिनचर्या में, हर प्रकार की परिस्थिति में व्यवहार करते हुए श्रद्धा रख कर देख!

इसी प्रकार विभूति पाद में भगवान ने जहाँ कहा कि दैवी गुण 'मैं हूँ,' सब में आत्मा 'मैं हूँ,' वहाँ अपने आपको वज्र, वासुकी सर्प, कामदेव, सिंह, मगरमच्छ और जुआ इत्यादि भी कहा।

पूज्य माँ ने भगवान के इस भाव की श्रद्धापूर्वक उपासना करके अपने जीवन में भगवान के इस वाक् का अनुभव किया, तभी तो वह हर प्रकार की वृत्ति वाले जीव को गले लगा सकते हैं।

कई लोग सर्प की वृत्ति वाले होते हैं जिनके वाक् डस लेते हैं। कई शेर की तरह दूसरे को चबा जाना चाहते हैं और कोई झूठ फरेब से दूसरों को लूट लेते हैं। जहाँ माँ ने सर्वश्रेष्ठ साधु और संतगणों का अंग लगाया, वहीं उन्होंने दुष्ट प्रवृति वाले इन्सानों को भी अंग लगाया। जब भगवान ने इन सबको अपना आप समझा, तो उनका भक्त उन्हें अंग न लगाये, यह कैसे हो सकता है?

यही राज़ है माँ में दोष दृष्टि के नितान्त अभाव का.. उनके राही दिव्य करुणा और प्रेम आदि दैवी गुणों के बहाव का.. जिसके कारण कई दुष्ट वृत्ति वाले लोग उनका यह प्रेम और करुणा पाकर बदल गये और सत् पथ पर चलने लगे।

परम पूज्य माँ द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता की यह जीवन के प्रमाण सहित व्याख्या मुझे बहुत विचित्र लगी, जो मैंने किसी अन्य ग्रंथ में आज तक नहीं पढ़ी थी। उनके सम्पर्क में आ रहे अनेकों स्त्री पुरुष उनके जीवन के सजीव प्रमाण से प्राप्त हुए इस गीता के ज्ञान से बदल रहे हैं।

अर्पणा आश्रम में विदेशों से आये हुए कुछेक ईसाई बहिन भाई भी रहते हैं। उन्हें बाईबल में ही अनेकों संशय थे, सो उसका त्याग करके वह हिन्दू धर्म में सत्य की खोज करने आये थे। माँ ने उन्हें पहले अपने धर्म में सत्य की खोज करने के लिये प्रेरित किया और भगवान यीशु के वाक् के प्रति एक एक करके उनके सारे संशय दूर किये, उनकी आस्था ईसाई धर्म में पुनः स्थापित की।

आश्रम के कुछ सदस्य नृत्य नाटिका के मंचन के उपरांत परम पूज्य माँ के साथ

यही आधार है कि आज अर्पणा आश्रम में सभी एक कुल के रूप में रहते हैं। वे सब पूज्य माँ से अपने अपने धर्मों के ग्रंथों में से प्रश्न पूछते रहते हैं। पूज्य माँ के द्वारा उनका शंका समाधान होते और जीवन को बदलते देख कर आज अर्पणा का हर सदस्य सब धर्मों को एक समान ही नहीं, एक ही मानता है। पूज्य माँ तो कहते हैं कि वह सब धर्मों के हैं और यह उन्होंने भगवान कृष्ण और भगवान राम से सीखा है।

माँ कहते हैं, 'धर्म केवल एक ही है। जब धर्म के मूल्यों का पतन हो जाता है तो मनुष्य के रूप में भगवान ही अवतार लेते हैं और एक साधारण जीवन व्यतीत करते हुए उन मूल्यों का प्रमाण देकर पुनः धर्म को स्थापित करते हैं। उनके जीवन राही प्रमाणित उनके वाक् ही शास्त्र के रूप में जग को प्राप्त होते हैं। यदि जीवन में अनुसरण करते हुए हम उनके वाक् को समझेंगे तो सब धर्मों के शास्त्रों का एक ही अर्थ निकलेगा।'

पूज्य माँ ने अपने जीवन राही धर्म का अर्थ प्रमाणित किया है, तब ही तो वह कह सकते हैं कि सब ही धर्म मेरे हैं।

अर्पणा में पूज्य माँ के द्वारा जीवन में शास्त्रों का अनुसरण करने से ही उनका सही अर्थ और उसका रस सार मिलता है, यह नित्य सिद्ध हो रहा है।

जीवन के राही धर्म का प्रचार ही तो अर्पणा के नित्य विस्तार को पा रही लोक कल्याण अर्थ सेवा की कर्म प्रणाली, इस युग में सही दिशा है। इस पथ पर चलता हुआ जीव जीवन में महा सुख और आनन्द को पाता है। एक दिन वह जान लेता है कि पूर्ण संसार उसका घर है और सारी वसुधा ही उसका कुटुम्ब है- वसुधैवं कुटुम्बकम्। इसका प्रमाण स्वयं पूज्य माँ हमारे लिये एक महान प्रेरणादायक शक्ति और प्रकाश हैं। उनके वाक् राही बह रही शास्त्रों की व्याख्या, आधुनिक युग में मानवता के गुणों को उपार्जन करने, परस्पर प्रेम और एकता प्राप्त करने के पथ का प्रकाश हैं। ❖

पूर्व ही निश्चित हो चुका, वह ही सामने आयेगा..

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

मुण्डकोपनिषद 2/2/8

अर्थात्- कार्यकारण स्वरूप उस परात्पर पुरुषोत्तम को तत्व से जान लेने पर; इस जीवात्मा के हृदय की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं; सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं; और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

तत्व विस्तार:

पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म, परा अपरा को जान लिया।
कार्यकारण समुदाय, जग रूप भ्रम जान लिया।।1।।

जड़ चित्त ग्रन्थी खुल जाये, जीवत्व भाव रे धुल जाये।
संशय में मन उलझा था, इक पल में सुलझ जाये।।2।।

समस्त कर्म शुभ अशुभ, स्वत: खेल रे छोड़ दें।
ज्ञान अग्न में बीज जले, जन्म मरण रे छोड़ दे।।3।।

अपरा परा जो जान ले, जड़ और परम को जान ले।
सत् असत् नित्य अनित्य, विद्या अविद्या जान ले।।4।।

स्थूल जग यह बाह्य जग, विश्व रूप वह जान ले।
माया का खिलवाड़ वह, विराट रूप वह जान ले।।5।।

सूक्ष्म तन और कारण भी, विश्व का वह अब जान ले।
तन स्वभाव कर्माशय, सम्पूर्ण ही वह जान ले।।6।।

अन्त:करण, वह जन्मे मरे, सूक्ष्म रूप भी वह ही धरे।
कारण में वह लय भये, पुन: भोग को प्रदुर भये।।7।।

संस्कार रे कर्मण के, कर्माशय में हैं पड़े।
तीव्रता जब वह पायें, देख रे आप ही प्रकट भयें।।8।।

बीज हिरण्यगर्भ पड़े, स्थूल वृक्ष यही बीज भये।
स्वरूप की सत्ता में कह लो, बीज अनेक रूप धरे।।9।।

कर्मण के बहु पात्र बने, अनेक कर्मण रूप धरे।
सूर्य रश्मि बिम्ब रे, किस पात्र सों संग करे।।10।।

या कहें रे स्वप्न में, द्रष्टा ने बहु रूप धरे।
जड़ चेतन स्वप्न जग में, द्रष्टा सब ही आप भये।।11।।

जग स्वप्न सों जाग उठे, किस नट सों अब द्वेष करें।
निज स्वप्न के किस नट सों, आप नहीं वह कह सके।।12।।

जड़ चेतन सब वह ही है, द्रष्टा बिन कुछ था नहीं।
पूर्ण स्वप्न में आप बिना, कुछ कहीं पे रहा नहीं।।13।।

अपने आप सों क्या रूठें, किस भाव को दुष्ट कहें।
किस भाव को हिय लगा, कहें रे हम सन्तुष्ट भये।।14।।

इक तन नहीं अपना सके, सम्पूर्ण अपने भये।
सब ही अपने हो करके, अपना एको नहीं रहे।।15।।

कार्यकारण समुदाय, स्थूल जग वह जान ले।
पूर्व कृत् कर्मण फल रूप, तम जड़ ही जग जान ले।।16।।

दृश्य जग विराट रूप, पूर्व कर्म परिणाम है।
निश्चित राहें आहें भी, विश्व कर्म का नाम है।।17।।

पूर्व ही निश्चित हो चुका, वह ही सामने आयेगा।
चित्रपट पे चित्रवत्, स्वत: ही होता आयेगा।।18।।

शब्द जग व्यावहारिक जग, तमो जग ही रे है।
पूर्व जन्म कृत् कर्म बीज, का ही वृक्ष फल यह है।।19।।

सूक्ष्म तन रे मनो लोक, आधुनिक कर्म लोक रे है।
यह मनोलोक स्वभाव लोक, आन्तर लोक यही रे है।।20।।

हिरण्यगर्भ यही है रे, तैजस इसी को कहते हैं।
प्राणमय विज्ञानमय, रजो लोक भी कहते हैं।।21।।

आन्तर लोक रे यह ही है, जग विस्तार रे यही करे।
इसकी राह तो कारण तन, स्थूल रूप रे बाह्य धरे।।22।।

कारण तन रे कर्माशय, हृदय लोक जिसे कहते हैं।
संचित कार्य बीज रूप, इसी लोक में रहते हैं।।23।।

आनन्द लोक यह मनो लोक, सत्त्व लोक रे यह ही है।
द्यु लोक रे प्रज्ञा लोक, ईश्वर लोक रे यह ही है।।24।।

लय अवस्था कर्मण की, जान ले साधक यह ही है।
समाधि लोक भी इसे कहें, अरी मनो लोक री यह ही है।।25।।

कारण सूक्ष्म स्थूल रूप, कर्मण की झंकार है।
कर्म चक्र हैं चल रहे, राम का ही खिलवाड़ है।।26।।

कर्म जन्में, कर्म मरें, निश्चित होता जायेगा।
पूर्व कर्म अनुकूल ही, अब सब होता जायेगा।।27।।

जड़ कर्म जड़ प्रेरणा, जड़ कर्माशय प्रदुर करे।
कारण सूक्ष्म स्थूल कर्म, जड़ ही हैं मन जान ले।।28।।

अधिभूत अधियज्ञ अधिदेव, जड़वत् चक्र चलाते हैं।
समष्टि व्यष्टि रूप यह, जड़वत् धरते जाते हैं।।29।।

व्यष्टि अन्त:करण जन्मे, व्यष्टि नक्षत्र जाये बने।
नक्षत्रन् सों बँधा हुआ, जीव नित्य ही नृत्य करे।।30।।

कर्म प्रति झंकार रूप, गुण गुणन् में वर्त रहे।
कर्मण का यह खेल है, जड़वत् ही हैं वर्त रहे।।31।।

मायिक माया में सब हैं, परम सत् तो बहु परे।
स्वप्न चित्रवत् मिथ्या जग, जाग उठे तो समझ सके।।32।।

परम तत्व वह परम सत्त्व, जग खिलवाड़ सों है परे।
स्वप्न चित्रवत् मिथ्या जग, जाग उठे तो समझ सके।।33।।

परम तत्व वह परम सत्त्व, जग खिलवाड़ सों है परे।
परम ब्रह्म अखण्ड तत्व, विभाजित वह न हो सके।।34।।

प्रकाश स्वरूप परम चेतन, सत् स्वरूप है परे।
परमेश्वर वह शिव रूप, महामौन रूप रे है परे।।35।।

महाकारण है स्वप्न परे, मायापति उसे कह लो।
मायिक माया संग त्यजी, सत्त्व सार रे जान सको।।36।।

जड़ तन को अपनाये, जड़ ही कारण है जिसका।
कार्यकारण समुदाय, निश्चित पथ रे है जिसका।।37।।

अनित्य संग छुट जायेगा, जिस पल सत्य यह जान ले।
चित्त ग्रन्थी खुल जायेगी, परम आधार जो जान ले।।38।।

मैं मम कहाँ पे रह पाये, अपना पराया नहीं रहे।
कर्म जन्में, कर्म मरें, अज्ञान वश भासित भाये।।39।।

अज्ञान ग्रसित यह मन मग्न, पाप पुण्य अपनाये है।
अखण्ड होई पृथक् निज को, अज्ञान में माने जाये है।।40।।

मुक्ति पा मुक्त हो गया, निज स्वरूप रे भूल गया।
नित्य मुक्त की मुक्ति क्या, नित्य सत्त्व वह भूल गया।।41।।

जड़ तन जड़ वर्तन त्यजी, सत्त्व सार तू जान ले।
माया सों तर जायेगा, परम सत्त्व तू जान ले।।42।।

अजन्म का जन्म रे नहीं हुआ, मरण रे क्या अब होयेगा।
अविभक्त विभाजित रे, इस जग में क्या होयेगा।।43।।

अखण्ड रस अद्वैत तत्व, नित्य निरन्तर मौन रस।
कौन शब्द अब कहाँ बहे, आप भये अखण्ड रस।।44।।

मिथ्यात्व में जग यह पाये था, स्वप्न से अब वह उठ गया।
रज्जू में जो सर्प रे था, सर्प अब वह नहीं रहा।।45।।

स्वप्न लोक से जाग के, स्वप्न जग को अपनाये।
सुख दु:ख स्वप्न के देख के, दु:खी सुखी क्या हो जाये।।46।।

स्वप्न बुत आभास ही है, स्वप्न स्थिति कोई है नहीं।
क्योंकर किस विध वह रहे, जिनकी स्थिति ही है नहीं।।47।।

अज्ञान आभास निवृत्त हुआ, नित्य स्थित अरे स्थित हुआ।
नित्य मुक्त की मुक्ति क्या, नित्य मुक्त तू ही रे बता।।48।।

फिर मुक्ति शब्द जग ब्रह्म शब्द, निरर्थक ही हो जाये।
महामौन में जाये करी, हर शब्द निरर्थक हो जाये।।49।।

अज्ञान ग्रन्थी देख मिटे, मन ही जिस पल नहीं रहे।
लिंग देह संग नहीं रहे, कर्म संग भी नहीं रहे।।50।।

प्रकृति संग यह काम संग, मोह अहम् ही नहीं रहे।
मन स्रोत यह मन जो था, वह कहीं पर नहीं रहे।।51।।

मनो वृत्ति बुद्धि भाव, आत्म तत्व में गुण नहीं।
स्वरूप में रे स्थित हुये, कोई रहे अब गुण नहीं।।52।।

बस राम राम ही राम रहे, अद्वैत में वह खो गये।
मन गया बुद्धि गई, आवरण परे वह हो गये।।53।।

17-9-61

अध्यात्म की रीत

श्रीमती सत्या महता

प्रत्येक प्राणी, जीव जन्तु से लेकर मनुष्य तक.. सभी सुख और निरन्तर आनन्द की चाहना रखते हैं। मनुष्य समझता है कि वह अपनी बुद्धि के प्रयोग राही सभी सामग्री एकत्रित कर सकता है जो उसे सुख दे और इस का मूल स्रोत वह धन को मानता है।

जीव समझता है कि धन से वह सब सुख समिधा एकत्रित कर सकता है। पर अकसर देखने में आता है कि बाह्य वस्तुओं से तो आन्तरिक चैन, शान्ति और सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। तृप्ति तो कभी होती ही नहीं। दो वस्तुएं प्राप्त कर लीं तो अगली दो वस्तुओं की ओर ध्यान चला जाता है। जीव का ध्यान हमेशा आगे से आगे वस्तुएं प्राप्त करने पर लगा रहता है.. स्थूल की चाहनाओं का तो कोई अन्त है ही नहीं।

ऐसे ही धनाढ्य लोगों को ले लो, हर कोई एक दूसरे से अधिक धनाढ्य दिखने की होड़ में लगा रहता है.. सो, धन का भी कोई पारावार नहीं। कोई ऐसा धनी भी दिखाई नहीं देता, जो धन से तृप्त हो गया हो।

पूज्य माँ से सत्संग में हम यही सुनते आये हैं कि आनन्द हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हमारे आन्तर से ही प्राप्त होता है। इसे खोजने के लिये बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। यह आनन्द मिलता है मन के पावन होने से! इस चित्त को पावन करने के लिये परम पूज्य माँ ने हम जैसे साधारण जीवों के लिये बहुत सहज और सरल विधि बताई है:

भगवान ने कहा है, 'मैं सब में हूँ!' जब इन्द्रियाँ बाहर जाती हैं, तो बाहर सब में भगवान के दर्शन करें, उन्हीं की चाकरी करें। आँखों ने किसी का दुःख दर्द देखा, तो उसे दूर करने के लिये उसकी सेवा में लग जायें.. यह मान कर कि भगवान ही इस रूप में आये हैं। ऐसा मान कर ही उसकी चाकरी करें। कानों में किसी की आर्त आवाज़ आई तो उसकी पुकार सुन कर उसकी चाकरी करें। कभी कभी

किसी का दुःख दर्द सुन कर ही उसके मन को सुख चैन दे सकते हो.. तो समय निकालें उसके लिये। कोई आगामी दुःख को सोच सोच कर दुःखी हो रहा है तो उसे बुद्धि का दान दें.. बुद्धि राही उसे समझा कर उस के दुःख को हल्का कर सकते हैं।

बाह्य क्रिया तो इस विध करें और आन्तर में अपने मन पर आसन लगायें। वहाँ पर देखो अपने

में और भगवान के कथन में दूरी कितनी है? भगवान के आदेश में और अपनी करनी में भेद को देखो और उस दूरी को देख कर भगवान से प्रार्थना करें कि वह मेरे संग संग रहें।

सो, बाहर भगवान की सेवा चाकरी करने से और आन्तर में भगवान को पुकारने से चित्त शुद्ध होगा तथा हम अपने को भूलेंगे। जितना जितना हम अपने को भूलेंगे, उतना उतना ही आनन्दित महसूस करेंगे।

यह तो अनुभव करने की बात है, जितना जितना इसे करेंगे तो आनन्द का अनुभव स्वतः ही होगा.. जितना जितना आनन्द का अनुभव होगा, उतना ही इसे दोहरायेंगे.. इस प्रकार उत्तरोत्तर हम इस पथ पर बढ़ते जायेंगे।

नव वर्ष के लिये अकसर आशीर्वाद देते हुए पूज्य माँ ने हमें यही सन्देश दिया

'Love All' :

इसी भाव से ही पूज्य माँ के स्वतः स्फुरित प्रवाह से ही यह भाव स्मरण हो आया

'मैं राम का चाकर हूँ, जो मिला मुझे मिल गया।
अपमान मिला मिल गया, ठुकराव मिला मिल गया।।'

इससे जग तो सुन्दर होता ही जायेगा, साथ ही साथ पूजा भी सफल हो जायेगी। इस प्रकार हम उस नित्य आनन्द में रहने लगेंगे, जिसकी हमें जन्म जन्म से खोज है। ❖

अपनी चाहना और संग की आहुति देना ही यज्ञ है!

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

श्रीमद्भगवद्गीता- 3/11

भगवान प्रजापति की बात कहते हैं कि प्रजापति ने कहा :

शब्दार्थ :

1. **इस यज्ञ से तुम देवता संतुष्ट करो,**
2. **देवता तुम्हें संतुष्ट करें,**
3. **परस्पर संतुष्ट होते हुए,**
4. **दोनों श्रेय को ही पायेंगे।**

तत्व विस्तार :

जब ब्रह्म ने प्रमाण देकर समझा दिया कि यज्ञ क्या है और यह भी दर्शा दिया कि यज्ञ का स्वरूप महामौन है, फिर उन्होंने मानो जीव से कहा :

'देवताओं को तुम तुष्टित करो, देवता तुम्हें तुष्टित करेंगे। दोनों का इसी में वर्धन हो।'

देवता कौन?

क) परम स्वभाव, परम प्रकृति, पञ्च तत्व से जो त्रिगुणात्मिका शक्ति पाये हो, वही देवता है।

ख) देव से मिली शक्ति को देवता कह लो।

ग) आत्मा में जो शक्ति है, उसको देवता जान लो।

घ) परमात्म व्यक्तिगत सा हुआ, वही आत्म शक्ति देवता है।

ङ) हर शक्ति जो परम राही मिली है, उस देव शक्ति को देवता कह लो।

च) गर यज्ञपूर्ण जीवन हो तब ही यह शक्ति तुष्टित होती है।

छ) कर्मेन्द्रियाँ यज्ञ करें तब ज्ञानेन्द्रियाँ पुष्टित होती हैं; क्योंकि, यज्ञमय कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है।

ज) इसमें निरन्तरता आये, तब ही हम अध्यात्म में स्थित हो सकते हैं।

झ) परिणाम में आनन्द मिलता है और जीवन कल्याणपूर्ण होता है।

यह सब कैसे हो, जीवन में यह यज्ञ क्या होता है, प्रथम इसे समझ लो!

यज्ञ :

1. देने का नाम यज्ञ है।
2. दूजे की स्थापति अर्थ काज करना ही यज्ञ है।
3. स्व अर्थ काज करना छोड़ कर अन्य पुरुष अर्थ काज करना यज्ञ है।
4. दूसरे की चाहना पूर्ण करना यज्ञ है।
5. जीवन में कर्तव्य पालन करना यज्ञ है।
6. अपनी चाह और संग की आहुति देना यज्ञ है।
7. परम परायण हो कर ही हर काज कर्म करना यज्ञ है।
8. सबके लिये सब कुछ करना ही यज्ञ है।
9. अपना तन दूसरों को दे देना ही यज्ञ है।
10. अपनी बुद्धि दूसरे के चरण धरो, यही यज्ञ है।
11. निज रुचि अरुचि को भूल कर दूजे को स्थापित करना ही यज्ञ है।
12. क्षमा, दया, करुणा इत्यादि दैवी गुणों का जीवन में प्रयोग करना ही यज्ञ है।
13. कोई तुम्हारे साथ जैसा भी व्यवहार करे, तुम मौन रहो, यही यज्ञ है।
14. दूसरों का सदा भला करते जाओ, यही यज्ञ है।

नन्हीं! जीव के कर्म या तो देवत्व को पुष्टित करते हैं या अहंकार रूप असुरत्व को पुष्टित करते हैं। जो यज्ञ करते हैं, वह देवत्व को पुष्टित करते हैं; जो स्वार्थ के लिये जीते हैं, वे असुरत्व को पुष्टित करते हैं। जिसे अपने लिये सब कुछ चाहिये, वह आसुरी गुण पुष्टित करता है। जो दूजे का भला करते जायें और यज्ञ करने की शक्ति को इस्तेमाल करें, उनसे वह यज्ञ रूप देवता पुष्टित होते हैं, यज्ञशेष ही तो इसका प्रसाद है।

कल्याण दोनों का इसमें हो जाता है। अब समझ यह कैसे होता है।

यज्ञशेष :

यज्ञ का परिणाम समझ लो तो यह भी समझ आ जायेगा।

1. यज्ञ कर्म से तू परम परायण यज्ञवान हो जायेगी।
2. नैष्कर्म सिद्धि को पायेगी।

3. आसक्ति रहित तब हो जायेगी।
4. संग रहित स्वतः ही हो जायेगी।
5. समत्व भाव में स्थित हो जायेगी।
6. तुम्हारा ममत्व भाव भी मिट जायेगा।

यज्ञ ही अभ्यास है आत्मवान बनने का। यज्ञ ही अभ्यास है सर्वोत्तम साधक का।

1. यज्ञशेष समत्व योग है।
2. यज्ञशेष ज्ञान योग है।
3. यज्ञशेष आनन्द रूप है।
4. यज्ञशेष निसंगता रूप है।
5. यज्ञशेष निर्मोह की स्थिति है।
6. यज्ञशेष निर्द्वन्द्व की स्थिति है।

यज्ञ देवत्व गुण का अभ्यास है, यज्ञशेष की राह से आप देवता हो जाते हैं। देवता यज्ञशेष खाते हैं। फिर, जब आत्मवान बन जाते हैं तब वे यज्ञशेष भी नहीं खाते। वे पूर्ण अनासक्त हो जाते हैं।

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः।।

श्रीमद्भगवद्गीता- 3/12

शब्दार्थ :

1. **यज्ञ से संतुष्ट हुए देवता,**
2. **तुझे निस्सन्देह मनोवांछित भोग देंगे,**
3. **उन देवताओं के दिये हुए (भोगों को),**
4. **जो उन देवताओं को दिये बिना भोगता है, वह चोर है।**

तत्व विस्तार :

देव शक्ति जब बढ़े और यज्ञ करे, तुम वांछित फल पा जाओगे। देवताओं से जो फल मिले, उसे देवताओं की देन जानो। भगवान कहते हैं, वह भी इनके चरण धरो। साधक! तुझे वह कहते हैं :

1. जो आनन्द तुझे यज्ञशेष राह से मिले, उसे भी देवताओं की ही देन जानो।
2. जो गुण यज्ञशेष राह से उपजें, उन्हें देवताओं की विजय का प्रताप मानो।
3. जीवन में यज्ञ राह से जो शक्ति बढ़े, वह देवताओं की देन है, यह जानो।
4. इस शक्ति राह से जो स्थूल संसार मिले, वह देवताओं की ही देन जानो।
5. इस शक्ति राह से जो ज्ञान मिले, उसे कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखो।
6. यज्ञ राह से जो इन्द्रिय शक्ति बढ़े, उसे भगवान की देन मानो और भागवत् काज में ही लगाओ।

इन्द्रिय शक्ति :

1. वह भी देवताओं की देन है।
2. वह भी तुम देवताओं के ही चरण धरो और तुम देवता बनो।
3. वह शक्ति भी परम की है, इस तत्व को जान लो।
4. अन्य जीवों के साथ जीवन में परम परायण होकर वर्तो।
5. उनसे भी संग नहीं करो, क्योंकि वह भी तुम्हारे नहीं है।

तुझे आत्मवान बनना है तो यहाँ सहज विधि कही है। उस शक्ति के प्रति अपने में भक्तिपूर्ण दृष्टि उत्पन्न करो। दैवी सम्पदा जो होता है। देवता तो शक्तियाँ होती हैं, उनके पास अपना कोई तन नहीं होता है। आपको जो यज्ञशेष मिलता है, उसे उनके चरणों में धरना ही

पाये हो, उसे भागवत् देन जान लो। ज्ञान का अनुभव होने लगे तो उसमें भी गुमान नहीं करना चाहिये। पाप त्यजी पुण्य किये, पुण्य त्यजी तप तथा यज्ञ किया, अब यज्ञ त्यजी आत्म भजो। तब ही आत्म में स्थित हो सकोगे।

'तैर्दत्तान' कह कर जान लो, भगवान 'छोड़ दो' नहीं कहते, संग त्याग ही वास्तविक त्याग होता है, बस इतना ही कहते हैं। देवता यज्ञशेष खाते हैं।

देवता :

आपके ही तन में, जो दैवी शक्तियाँ आप ही से काज करवाती रही हैं, उनके परिणाम में जो स्थूल भोग पाये हो, उनका भोग आप कर सकते हैं; स्थूल विषय भोग तो तन राही ही देवताओं को भोग लगाना है।

यानि यज्ञशेष देवताओं की कृपा से आपको मिला। उस पर आप इतरायें नहीं। उन गुणों को आपने अपने बल से पाया है, ऐसा भाव अपने मन में कभी न आने दें। उन गुणों को अपना न मान लें। यदि उन गुणों को आप परम देन, परम शक्ति मानें; यदि आप अपने सद्गुण नहीं अपनायेंगे, तो तनत्व भाव से उठने में भी सुगमता आ जायेगी।

जो इन्सान अपने सुकर्मों को नहीं अपनाता और सराहता, जो अपने शुभ कर्मों को भगवान पर छोड़ देता है, वह इन्सान मान और अपमान से जल्दी उठ जाता है। अधिकांश जीव अपने अच्छे कर्मों को अपनाकर तो गुमान करते हैं

और बुरे कर्म छुपा कर मौन रहते हैं। आत्म तत्व की ओर बढ़ने वाले निपुण तथा दक्ष साधक यह नहीं करते, बल्कि इससे उलट बात करते हैं। भगवान कृष्ण स्वयं अर्जुन को यह बता रहे हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।
श्रीमद्भगवद्गीता- 3/13

भगवान कहते हैं :

शब्दार्थ :

1. **यज्ञशेष खाने वाले सत् पुरुष,**
2. **सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाते हैं।**
3. **पापी गण केवल अपने लिये ही पकाते हैं।**
4. **वे तो पाप ही खाते हैं।**

तत्व विस्तार :

प्रथम समझ ले कि यज्ञशेष खाने वाले सत् पुरुष क्या खाते हैं, जिसके कारण उन्हें पाप नहीं लगता।

नन्हीं आभा! पुनः समझ :

1. ज्ञान की अग्न जला कर और उसमें अपनी कर्मफल की चाहना को अर्पित करके, जीव अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य और यत्न लगा कर दूसरों के लिये जो कर्म करता है, उस कर्म को यज्ञमय कर्म कहते हैं।
2. जीवन यज्ञ में साधक के हर कर्म की आहुति, उसकी ज्ञान रूपा अग्नि में पावन होकर बाहर जाती है।

ऐसा साधक :

क) निष्काम भाव में टिका होता है।

ख) कर्म परिणाम के प्रति समभाव का अभ्यास कर रहा होता है।

ग) ममत्व भाव से उठने का अभ्यास कर रहा होता है।

घ) आत्मवान बनना चाह रहा होता है।

क्यों न कहें, उसके कर्मों को उसका अपना लोभ, संग, कामना, राग, द्वेष इत्यादि छू भी नहीं सकते; इस कारण वह अति पावन होता है। ऐसे कर्मों के परिणामस्वरूप जो उसे मिलता है, वह वही खाता है; वही तो यज्ञशेष होता है।

यज्ञशेष भक्षण करने वाले :

1. आत्म त्याग के परिणामस्वरूप आनन्द को खाते हैं।
2. समर्पण करने वाले प्रेम को खाते हैं।
3. नित्य न्याय के उपासक का अन्न सत्यता तथा निर्द्वन्द्वता ही होती है।
4. धैर्य और धीरता रूप अन्न इन्हें पसन्द होता है।
5. नित्य यज्ञमय कर्म करते हुए, इन्हें करुणा, दया, क्षमा रूपा अन्न मिलता है।
6. तितिक्षा, सहिष्णुता, गम्भीरता, इनके अन्न के सहज अंग होते हैं।
7. इनके यज्ञशेष में आनन्द, शक्ति, सुहृदयता, मैत्री और प्रेम की सहज सुगन्ध है।

साहस तथा निर्भयता से यह यज्ञ करते हैं तो इनके यज्ञ का प्रसाद महा पावनकर बन जाता है। संक्षेप में यूँ समझ लो कि सम्पूर्ण दैवी गुण इन्हें यज्ञशेष में मिल जाते हैं। यह दैवी गुण ही इन लोगों का वास्तविक अन्न होता है। उस अन्न का भक्षण करते करते इनमें यही गुण एवं शक्ति और अधिक पुष्टि पाते हैं और इनका देवत्व नित्य बढ़ता रहता है।

1. शनैः शनैः वे निष्काम भाव में स्थित हो जाते हैं।
2. वे नित्य निर्लिप्त हो जाते हैं।
3. वे निरासक्त तथा मोह रहित हो जाते हैं।
4. वे समदर्शी और अपने तन के प्रति उदासीन हो जाते हैं।
5. तत्पश्चात् वे देहात्म बुद्धि त्याग कर आत्मवान बन जाते हैं।

भगवान कहते हैं कि ऐसे लोग सम्पूर्ण पापों से छूट जाते हैं।

दूसरी ओर, जो लोग केवल अपने लिये ही कर्म रूपा अन्न को पकाते हैं, वे तो पाप करते हैं और पाप ही खाते हैं। 'अपने लिये ही पकाते हैं', इसका तात्पर्य यह है, कि वे हर कर्म:

1. अपने तन की ख़ातिर करते हैं।
2. अपने तन की स्थापना अर्थ करते हैं।
3. अपनी रुचि की पूर्ति के लिये करते हैं।
4. अपने तन के तदरूप होकर करते हैं।
5. अपने तन को पहले रख कर करते हैं।

ऐसे लोगों के लिये दूसरा कोई व्यक्ति महत्व नहीं रखता। ऐसे लोग दूसरे के सुख के लिये कुछ नहीं करते। वास्तव में ये अपना मान बनाने के लिये औरों का मान हर लेते हैं। अपने धन के लोभ के कारण दूसरों को तबाह भी कर देते हैं। अपनी मनोमौज के कारण दूसरों की लाज भी हर लेते हैं। ये लोग ख़ुद बुरे आचरण वाले होते हैं और कलंक दूसरों पर लगा देते हैं। अपने को ये सर्वबुद्धिमान मानते हैं, चाहे सामने भगवान भी हों, उन्हें भी न्यून ही मानते हैं।

क) ऐसे लोगों के पास जो भी रहता है, उसे वे हर पल झुकाने के यत्न करते रहते हैं।

ख) बस, केवल अपनी स्थापति अर्थ लोगों से दोस्ती लगाते हैं, और जहाँ भी स्वयं को नीचा होते देखते हैं, वहाँ से दोस्ती तोड़ देते हैं।

नन्हीं! इन लोगों की तन रूपा हाण्डी में केवल इनके अहंकार को पुष्टित करने वाले कर्मों की भुजिया बनती है और उस भुजिया का फल भी वे अकेले ही लेना चाहते हैं।

भगवान कहते हैं - ये लोग पापी होते हैं। पाप ही पकाते हैं और पाप ही खाते हैं।❖

शुद्ध बुद्धि

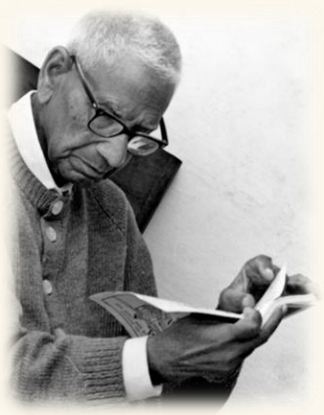

पिता जी - शास्त्रों में बार बार शुद्ध बुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है। गायत्री मंत्र का महत्व भी इसी कारण है क्योंकि उसमें शुद्ध बुद्धि का वर्णन है। वह शुद्ध बुद्धि क्या है? केवल मंत्र बोलने से तो वह आ नहीं जायेगी। उसे कैसे पाया जाये?

सांराश - निर्णयात्मिका शक्ति का नाम बुद्धि है। शास्त्रों से पढ़ा हुआ ज्ञान बुद्धि नहीं बन सकता। सत् असत् की पहचान करने की शक्ति का नाम बुद्धि है। स्थितप्रज्ञता ही सत् बुद्धि है। उससे कम जो है वह मन ही है।

प्रश्न अर्पण

शुद्ध बुद्धि किसे कहते हैं, गायत्री भी पुकारें जिसे ।
मन्त्र पठन सों आये न, कैसे राम बुद्धि वह मिले।।1।।

शास्त्र पठन मन्त्र रमण राह, बुद्धि शुद्ध नहीं हुई ।
अब विधि भगवान कहो, कैसे शुद्धि यह आयेगी।।2।।

तत्व ज्ञान

निर्णयात्मिका शक्ति को, जान लो बुद्धि कहते हैं।
निरपेक्ष होई द्वौ पक्ष सुनी, निर्णयकर शक्ति कहते हैं।।3।।

न्यायाधीश समान वह है, निरपेक्ष हो कर निर्णय दे।
संग मोह या अंहकार, उसको नहीं यह छू सके।।4।।

इक ओर तन मन बुद्धि, अहंकार भी खड़ा रहे।
'मैं' स्थापित करने को, अहं ब्रह्म का हनन करे।।5।।

दूजी ओर हैं ब्रह्म खड़े, जो निरन्तर मौन रहें।
वाङ्मय रूप शास्त्र, प्रतिनिधित्व उनका ही करें।।6।।

चोरी 'मैं' ने आप करी, न्याय भी 'मैं' ही चाह रही।
न्यायाधीश भी आप यह, ब्रह्मकोण आप बता रही।।7।।

कैसा न्यायाधीश वह हो, जो अपने विरुद्ध ही न्याय करे।
जीवन में चाहे बुरा लगे, प्रतिपक्ष को भी सत् सिद्ध करे।।8।।

हो न्यायप्रिय शक्ति जो, अखण्ड सत्त्व की भक्ति जो।
सत् में 'मैं' को भी भूले, उसको तुम बुद्धि कहो।।9।।

ज्ञान-विज्ञान सहित

जो सत् को सत् माने है, और सत् को पहचान ले।
विघ्न पे जो विजयी भये, बुद्धि उसको जान ले।।10।।

बुद्धि कर्म की बात नहीं, स्थूल राही वह नहीं मिले।
जग सम्पर्क से जो मिले, बुद्धि उसको नहीं कहें।।11।।

ज्ञान जो भी पाया है, वह तो बुद्धि नहीं होये है।
शास्त्र वचन भी जान लो, बुद्धि तो नहीं होये है।।12।।

निर्णयात्मिका शक्ति जो, ज्ञान पे भी जो निर्णय दे।
पठित ज्ञान गर बुद्धि भये, तो कैसे उसको तोल सके।।13।।

स्थूल रमण सम्पर्क से, जो नयन देखें अपनाये।
रुचिकर तव मन अपनाये, अरुचिकर से वह दूर जाये।।14।।

रुचिकर जो अपनाये वह, रुचिकर बुद्धि न होये।
अरुचिकर से बचाव विधि, यह भी बुद्धि न होये।।15।।

कैसे जग में मान मिले, यह बुद्धि की बात नहीं।
उपार्जित धन किस विध होये, यह बुद्धि के हाथ नहीं।।16।।

जिसको बुद्धि राम कहें, प्रज्ञा भी उसे कहते हैं।
वह उस राही बह सके, जो नित्य सत्त्व में रहते हैं।।17।।

जो जाने वह बुद्धि नहीं, जो जान सके वह बुद्धि है।
ज्ञान बुद्धि न होये, पहचान शक्ति बुद्धि है।।18।।

निरपेक्ष सत् दिखा वह दे, ज्ञान राज़ सुझा वह दे।
अपना मन क्यों न माने, निज मन दशा दर्शा वह दे।।19।।

सत्त्व को सत्त्व ही जान करी, असत् विचरण छोड़ दे।
स्थूल है क्या मन है क्या, ज्ञानी सतमय निर्णय दे।।20।।

इक ही नाता है जुड़ा, वह नाता राम से हो गया।
केवल सत्य से नाता है, अन्य विराम ही हो गया।।21।।

वह राम कही के राम लग्न, नित्य बढ़ाना चाहते हैं।
'मैं' सत्य में खो जाये, वह शास्त्र पढ़ते जाते हैं।।22।।

शास्त्र विधि है परम नहीं, शास्त्र में राह है राम नहीं।
शास्त्र जानो गर जान सको, वह शब्द हैं पर ज्ञान नहीं।।23।।

शास्त्र पढ़ी पढ़ी जो पाओ, वह ज्ञान नहीं कहलाता है।
ज्ञानी वह ही होये है, जो प्रज्ञावान हो जाता है।।24।।

पढ़ी पढ़ी नारद भी गये, सनत कुमार के चरण पड़े।
पूर्ण विद्या वह जाने थे, फिर भी जाई के शरण पड़े।।25।।

सनत को कहा नारद ने, यह बुद्धि नहीं मैंने जान लिया।
पूर्ण ज्ञान तो पा लिया, चैना अब लौ मुझे नहीं मिला।।26।।

ज्ञान तो था पर शब्द वह था, वाक् मात्र वह ज्ञान था।
अनुभव किसको कहते हैं, उसका नहीं अनुमान था।।27।।

बुद्धि स्थूल की नहीं नहीं, स्थूल राही वह नहीं मिले।
आंतर जाये सत् देखे, प्रतिष्ठित हो तब ही देखे।।28।।

रोम रोम गर राम कहे, और राम में मन गर खो जाये।
अनेक वृत्ति रूपा मन, जब एक वृत्ति ही हो जाये।।29।।

यह वृत्ति आंतर जायी, सत्य उपासना जब करे।
उपासना है सत् सहवास, सत् के साथ वह जाये बसे।।30।।

नित्य सत्य के संग रहे, असत् जो है छोड़ दे।
जो है वह ही सत्य है, और आशा तृष्णा छोड़ दे।।31।।

मैं यह हूँ मैं यह नहीं, ऐसी बातें छोड़ दे।
शब्द त्यजे जो बाकी रहे, सत् बुद्धि उसको कह ले।।32।।

जब लौ कुछ भी करना है, बाह्य प्रज्ञ की बुद्धि है।
कर्तापन जब लौ है, कर्म कर्ता की बुद्धि है।।33।।

जब लौ कोई है आपुनो, चाह आपुनो वहाँ रहे।
तब लौ इसी यत्न में, निरन्तर बुद्धि लगी रहे।।34।।

यह स्थूल रमणी बुद्धि है, इसे निहित बुद्धि तुम कहो।
स्थूल बुद्धि का साचो नाम, या दूजा नाम मन ही हो।।35।।

सत्त्व बुद्धि वह ही है, जो सत्त्व में ऐसी खो जाये।
कुछ भी याद ही नहीं रहे, आप सत्य वह हो जाये।।36।।

जब लौ सत्य में जाये करी, प्रतिष्ठित मन न हो जाये।
जब लौ 'मैं' और 'मेरा मन', सत्त्व में न खो जाये।।37।।

तब लौ जानो बुद्धि नहीं, स्थूल उपार्जित खेल है।
स्थूल और तव मन का, जब हुआ वहाँ मेल है।।38।।

स्थूल और मन के मिलन, से उपज यह आई है।
समझ साधक तव मन ने, मिथ्या नाम धरायी है।।39।।

उसको बुद्धि नहीं कहें, प्रतिकार झंकार तुम कहो।
रुचि ही है उसकी मनवा, बस एक आधार कहो।।40।।

बुद्धि तब ही उपजे है, जब संघर्ष तुम छोड़ दो।
मनो मिलन जो स्थूल से हो, उससों संग तुम छोड़ दो।।41।।

मनो नाता भये सत्त्व से, सत्त्व से मिलन जो हो जाये।
मन स्थूल में न खोये, जाये के सत्त्व में खो जाये।।42।।

फिर मन का नामोनिशान मिटे, वह आप सत्त्व ही हो जाये।
जिस पल सत्त्व यह मन भये, पल में मौन यह हो जाये।।43।।

स्थितप्रज्ञता बुद्धि है, निर्णयात्मिका शक्ति यह।
सत् असत् में भेद जो, नि:संकोच सम्मुख धर दे यह।।44।।

फिर स्वतः ज्ञान ही बहता है, वह बुद्धि नहीं इसे कहता है।
अपने ज्ञान और मान पे, वह टिका नहीं रहता है।।45।।

आंतर जायी आसीन हुआ, वह तो उदासीन हुआ।
जो मिला वैसा भया, लगे कर्म आसीन हुआ।।46।।

वह नहीं कभी खोये है, तन दर्शाये खोया हुआ।
प्रगाढ़ निद्रा में जानो, उसका 'मैं' सोया हुआ।।47।।

जिस पल ऐसी स्थिति आये, वह बुद्धिमान हो जायेगा।
बुद्धिमान उसे क्या कहें, वह ज्ञानघन हो जायेगा।।48।।

जो पूछे उसे वैसा कहे, वा भावना देख के कहता है।
जैसी जिसकी भावना, वह वैसा बन कर रहता है।।49।।

राम कही के पहुँच वहाँ, ज्ञान राही नहीं पहुँच सको।
शास्त्रन् में जो है कहा, मनन करो तो पहुँच सको।।50।।

30.10.1965

अहम् की मैली व पैबंद भरी चादर को उतार कर..
आप राम नाम की चादर ओढ़ा देते हैं!

श्रीमती पम्मी महता

हे श्री हरि माँ, आपके जिस पहलू में भी उतर आऊँ.. आपका अंदाज़-ए-बयां बड़ा ही अनूठा व निराला है। कितनी पाकीज़गी है आपकी हर उस देन में, जिसे हृदय-दामन में समेटने से पहले ही आप माँ उसे इस हृदय में इस क़दर उतार देते हैं.. कि वह इस हृदय की धरोहर बनी उसी में सदा-सदा के लिये सिमट कर रह जाती है।

माना कि मैं बहुत निमानी हूँ। मगर आपसे पाया जीवन का हर प्रसाद नूरे-ए-इलाही की तरह इसके हृदय को ही आलोकित किये रहता है इस एहसास के साथ.. कि आपकी इस ज्योत्सना से ही जग ज्योतिर्मय हुआ है!

आप श्री हरि माँ को व आपकी ज्योत्सना को नतः श्री बारम्बार हुई नमन देती हूँ! धन्य हैं आप हे विभूति पाद, जो आपने अपने श्री चरणन् को पखारने का इसे सुअवसर प्रदान किया.. यह पुजारी मन आप ही की सेवकाई का वरदान पाये रहे, जो यह जीवन सार्थक हुआ धन्य धन्य हुआ रहे!

आप माँ का मौन कभी कभी, किसी न किसी तरह हृदय को दस्तक देता ही रहता है.. और उसकी गूँज आंतर के दरो-दीवार से निकल कर जैसे surface पर उतर आती है! ऐसा ही आपका एक मौन

संदेश मुझे जगा रहा है.. जब भी आपकी मेहर में आगे से आगे आपकी इनायतें जुड़ती जाती हैं, एक एक करके.. तभी तहेदिल से अपना आभार व्यक्त करने बैठ जाती हूँ! वास्तव में मेरा ही यह एक वायदा होता है अपने आपसे.. जो भी पा रही हूँ आपसे, उसे जीवन राही उठा सकूँ!

आपकी वाणी का सत्य कैसे कैसे गूँज कर आंतर में प्रवाहित होता है.. देखते ही बनता है। आपने अपने प्रवाह को जैसे भी बहाया हो, मेरे आंतर को जब छूता है तो मानो, आपके दीदार का अवसर मिल जाता है.. आपको रूबरू देखने का! आपके उन शब्दों में आपके जीवन के दिव्य दर्शनों का अवसर मिल जाता है।

आपने बताया, 'मैं कभी कभी आपको आप ही के आँसुओं से पूर्णतया धो कर अपना आदेश देता हूँ।' इस सत्यता के पीछे आपके उस प्यार की पराकाष्ठा को देख कर मेरा हृदय छलछला उठता है.. यह आसूँ रुख़सार से ढल ढल कर अपने वन्दनीय माँ के क़दमों को स्पर्श करी बह जाते हैं।

धन्य हैं आप माँ, कैसे कैसे अपनी मुहब्बत में जगाते ही चले जाते हैं! ईश्वर करे, उस आपकी देन को अतीव शुद्ध व निश्छल भाव से ग्रहण करते हुये इतनी ही प्रार्थना करूँ, 'याख़ुदा, उस आदेश को मेरे हृदय में ज्यों का त्यों संजोये रखियेगा.. इसे कभी भी मैं मैला ना होने दूँ।'

आप माँ का हर आदेश मेरे सर आँखों पर इस क़दर रहे कि जीवन राही इसे ग्रहण करते हुए आप ही के क़दमों में सर झुका रहे। *'Love all'* आपके इन दो शब्दों का खेल बहुत ही महत्वपूर्ण आदेश लिये होता है.. इसे शुद्ध स्वरूप में ही सदा लेती रहूँ जो मेरी कालिमा इस पर कलंक न बन जाये कभी! इसी लिए यारब इसपे करम फ़रमाये रखना। आपके हुक्म में रहने को यह जो अनमोल पल मिले हैं, अपने किसी संग के कारण इन्हें गँवा न लूँ.. पहले ही अपने स्वार्थ में इतने जन्म गँवा लिए..

या कहूँ, उसे आपके पास आने की रहगुज़र का वह हिस्सा.. जिसे वियोग कहते हैं, आप ही ने मेहर करी इसी वियोग को मिलन के संयोग में परिणत करने का व इस अपनी कनीज़ को धन्य धन्य होने का बहुत ही सुनहरा अवसर दिया है। ख़ुदा करे, इसे कभी भी अब खो न लूँ, ऐसो ही हे नाथ, आप इसे अपने से सनाथ रखियेगा व मेरी अनुनय-विनय स्वीकार कर लीजियेगा।

आपकी कृपा से ही तो मिलन के योग्य हो पाने का आप अवसर देते हैं। इसी लिए आंतर मन से यह सत्य निकलता है.. सच ही यह काली करमों वाली है आप ही की बदौलत माँ! भय, संकोच व अहम् की मैली व पैबंद भरी चादर को उतार कर आप राम नाम की चादर जो ओढ़ा देते हैं। दैवी देन रूपी रत्न आप स्वयं ही इस चादर पर मढ़ कर इसे परम पति सों यूँ मिलन के लिए श्रृंगारित कर देते हैं।

धन्य हैं आप हे साईं रब, जो परम पति के अनुरूप आप अपने हाथों से सजाते हैं.. 'मैं' को तो आपने इसे कभी छूने ही नहीं दिया.. यही मेरे धन्य भाग्य भी हैं और परम सौभाग्य भी!

हे माँ, आपसे संस्कार पाई जब आंतर विभूषित हो जाता है तो बाहर का जगत केवल परिस्थिति बन कर रह जाता है- हर moment, teachable moment बन जाता है। दूसरी ओर आप प्रभु माँ के हाथों से जो एक बार तराश लिया जाता है उन तराशने वाले दिव्य हाथों को अतीव विनम्र भाव से सजदा करने को बारम्बार जी चाहता है।

श्रद्धा, प्रेम व भक्ति भाव से हे श्रद्धेय, आप ही की चरणरज सीस चढ़ा कर आपको असीम अदब व प्यार से नमन देती हूँ। दुआ करती हूँ आप ही से, जब भी आपकी जानिब आऊँ.. पूर्णतया अर्पित व समर्पित भाव से आ पाऊँ!

हे करुणाकर, आपकी करुण कृपा यूँ ही मुझ पर बरसती रहे जो आप ही में जा विलीन हो जाऊँ। यही तो आप माँ से मुझे प्रयोजन मिला है इस जीवन का.. और जीवन की इसी यथार्थता की अभिव्यक्ति का सुअवसर भी! हे नाथ, गर इस मन, वचन, काया में आप ही आप विराजते हैं.. तो आइये, स्वयं को ही इसमें से बहने दीजिये व इसे अपने क़दमों पर अर्पित व समर्पित कर लीजिये। हरि ओम्

प्रारब्ध वेग-

‘बहु खड्ग काल जो लाया था, त्रिशूल ही वहाँ रह गया..’

प्रस्तुति- विष्णु प्रिया महता

भक्त के हृदय के तार भगवान के चरणों से जुड़े हैं, परन्तु तन प्रारब्ध विवश संसार में विचरता है, उसे अभी कुछ कर्म-धर्म निभाने हैं। इस द्वन्द्व से भक्त व्यथित है और उसके लिये अपने भगवान से यह दूरी असह्य है। परन्तु इस दुःख में भी वह आश्वस्त है कि भगवान स्वयं ही उसके लिये वह कवच बन जायेंगे, जिसे प्रारब्ध का कोई भी बाण बेधित नहीं कर सकता। वह रेखा का परिवर्तन न माँग कर अपने को पूर्णतया भगवान के चरणों में अर्पित कर देता है। इसी प्रक्रिया की एक झलक है पूज्य माँ के मुखारविन्द से निसृत यह प्रवाह-

इक ओर भावना है मेरी, इक ओर प्रारब्ध है खड़ी।
द्वन्द्व युद्ध पिया हो रहा, मैं तो यारब हूँ खड़ी।।

प्रीत लगी मेरी भावना से, प्रारब्ध भी बहु वेग भरी।
गुणातीत मैं नहीं हुई, इस कारण हूँ घबरा गई।।

मन मेरा हे राम मेरे, तेरे चरणन् में ही रहता है।
भाग्य रेखा का लेखा प्रभु, तन को कुछ और ही कहता है।।

देख राम मैं अबला सी, तोरे चरण में आई हूँ।
आज पिया सँशय उठा, मैं आज बहुत घबराई हूँ।।

मैं यह न कहूँ हे राम मेरे, तुम पतित को पावन नहीं करो।
यह भी मान मैं नहीं सकूँ, हूँ दुष्टा मैं तुम मेरे हो।।

आज राहों में भूली हूँ, तुम ही कहो मैं क्या करूँ।
राहों में मैं भूली हूँ, किस विध तुमको पा सकूँ।।

भक्त को भगवान की करुणा पर तनिक भी संशय नहीं, फिर भी वह उस करुणा का साक्षात् दर्शन व स्पर्शन् क्यों नहीं कर पा रहा? गहरे आत्मविश्लेषण पर वह अपनी तनोतदरूपता को ही इसका कारण समझता है। स्वयं तन से बद्ध रह कर वह भला अतीन्द्रिय और अचिन्तय तत्व को कैसे समझ सकता है? इसलिये वह मानो अपने प्रियतम को भी तनोस्तर पर उतरने के लिये बाध्य कर रहा है। वह ही तन धर कर उसकी भाषा में समझायें तो शायद वह अपनी वास्तविकता तक पहुँच पाये!

तनधारी मैं हूँ पिया, तन धर कर तुम आ जावो।
सब मुझको समझा जावो, और दर्शन भी दिखला जावो।।

ज्ञान दिये कुछ न होगा, इस भाव में मुझे समझा जावो।
जिस तत्व के पीछे जाती हूँ, वा सार मुझे समझा जावो।।

कौन हूँ मैं जिस तेरे कारण, सारी दुनिया त्यागी है।
कौन हूँ मैं जिसे पाने को, आज अभागिन जागी है।।

जग हाथों से चल दिया, तू भी पिया मुझे नहीं मिला।
दुःखिया मन विरह भरा, आज मिलन को तड़प गया।।

भक्त को भगवान पर दृढ़ विश्वास है- 'उनकी करुणा में किसी प्रकार की कमी नहीं! यदि कहीं विपरीतता होगी भी, तो केवल अपने प्रारब्ध कर्म ही मुझे मेरे प्रभु से विमुख कर सकते हैं। हाँ, मेरे प्रभु की करुणा से प्रारब्ध में लिखी सूली भी काँटे के समान हल्की हो जाती है।' इसका अनुभव साधक अपनी नित्य दिनचर्या में पा रहा है!!

तुझ पे सँशय नहीं करूँ, निज रेखा पे सँशय मुझे।
कभी तुमसे मिलने यह देगी, अरे इसपे है सँशय मुझे।।

जो किया इस तन ने किया, और तूने कहा वह मैं नहीं।
प्रारब्ध बधित यह तन मेरा, सब कर्म करे और कुछ नहीं।।

कुछ समझ नहीं अज आ रहा, यह मन मेरा घबरा रहा।
तेरे चरण में बैठ के राम मेरे, यह क्या मुझे होता जा रहा।।

क्या समझूँ आज सूली का, शूल ही है रह गया।
बहु खड्ग काल जो लाया था, त्रिशूल ही वहाँ रह गया।।

लेखा न पिया मिट सका, तूने गौण है कर दिया।
प्रारब्ध को इस विध पिया, तूने मौन है कर दिया।।

प्रियतम को वरने के लिये वैराग्य रूप जयमाल का होना अनिवार्य है। इसलिये साधक एकाग्रता से इस माला को बनाने में व्यस्त है और जन्म जन्मान्तर से उस मिलन बेला की प्रतीक्षा में बैठा है।

तुझको माला सुन पिया, तब पहरा पाऊँगी मैं।
वैराग्य पूर्ण हो ही गया, तो ही तो आ पाऊँगी मैं।।

वैराग्य के रंग सों रंग गई, तो इक दिन तुम तक आऊँगी।
क्या उस पल कहो राम मेरे, माला पहरा मैं पाऊँगी।।

प्रार्थना शास्त्र नं. 1/260
3-1-1960

भक्त के लिये जब अपने भगवान का वियोग असह्य हो जाता है, तो इसकी शिकायत भी वह भगवान के पास ही ले जाता है। कभी प्रेम से और कभी रूठकर.. वह उन्हें मनाने के यत्न करता है। उसे जग से कोई गिला नहीं। क्योंकि वह इस सत्य को पहचान चुका है कि भगवान के कहे बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो फिर वह किसी अन्य से क्या गिला करे? ऐसी ही एक प्रेम वार्ता की झलक हमें मिलती हैं निम्नलिखित प्रवाह में-

चरण में बैठ के राम मेरे, तुमको तुमसे माँगत हूँ।
तुम इक न सुनो हे राम मेरे, तुमसे तुमको माँगत हूँ।।

तुमने कहा जब मन तड़पे, मैं तेरे द्वार पे आ जाऊँ।
मैं प्रेम मुदित मन लाई थी, अब द्वार पे आ घबरा जाऊँ।।

तुम तड़पाओ सता भी दो, मन तुमको ही अब याद करे।
तुम एको न पूछो मेरी, मन मिलन की ही फ़रियाद करे।।

करुणापूर्ण तुम्हें कहें, कहाँ पे करुणा है तेरी।
इक फ़रियाद भी राम मेरे, निज कानों में न धरी मेरी।।

इतने दिन से मैं तड़प रही, तुमको याद भी न आई।
तुमने ही तड़पाया मुझे, क्या तुझको लाज ही न आई?

बहु बड़े-बड़े तूने नाम धरे, यह सब सुन के मैं आई थी।
तूने ही बुलाया राम मुझे, तुम कहो कब मैं आई थी।।

विरह व्यथित भक्त का हृदय भगवान के सामने अपनी व्यथा धरता है- 'भगवान प्रेमस्वरूप हैं, करुणा के सागर हैं इत्यादि इत्यादि! आपकी इस महिमा को सुनकर ही तो आकर्षित हुई थी आपकी

ओर! तभी तो आशा जगी थी मन में कि मुझ पतित का उद्धार भी सम्भव है! परन्तु यहाँ तो अनुभव ही कुछ और हुआ! जब तक संसार में रहती थी तो मन मुदित था, क्योंकि अपने पर कभी संशय हुआ ही नहीं। जब प्रियतम से प्रीत हुई तो मानो अपनी सत्यता के प्रति सजग हुई और मन तड़प गया!!'

मुदित हो जग में तेरे, हर पल मैं इतराती थी।
मैं क्या जानूँ भ्रम में पड़ी, भ्रम से ही भरी जाती थी।।

अब जाग गई तो तड़प गई, क्या यही मिला मुझे प्रेम किये।
सुन ले राम तूने यही दिया, मुझे विरह मिला तेरा नेम लिये।।

तुझे कहे से क्या होगा, क्या मैंने किया तुम जानो न।
इक बेरी तो मुख से कहो, क्यों मेरी एको मानो न।।

किसी को सखी मैं क्या कहूँ, राम मेरे ने लूट लिया।
वा चरणन् में जाये बसी, मैं का भाग्य ही फूट गया।।

लोग सौभागिन कहें मुझे, बड़भागिन मोहे कहते हैं।
वह क्या जानें सखी व्यथा मेरी, अभागिन को क्या कहते हैं।।

राम बिना को' कह सके, क्या कारण है इस व्यथा का।
मैं तो इतना ही जानूँ, अधिष्ठान है वह मेरी कथा का।।

जो भी किया उसने किया, किसी अन्य को दोष क्या मैं दूँ।
मेरे देवता तुम ही कहो, तुझपे रोष मैं क्या करूँ।।

मन का दीया मोरा बुझ रहा, बाह्य दीप जगाया करूँ।
दीप जला के पिया मेरे, तुमको ही मनाया करूँ।।

कब लग पिया तुम रूठोगे, किस विध मानोगे राम मेरे।
इक बेरी घर आ जावो, कबहुँ मानोगे राम मेरे।।

पीर पराई कोई न जाने, सखी तुझे समझ न आयेगी।
राम ने जब तुम्हें तड़पाया, तू तब जान ही जायेगी।।

प्रार्थना शास्त्र नं. 1/305
6-2-1960

यज्ञमय कर्म

श्रीमती शीला कपूर

हमारे दैनिक जीवन के प्रवाह में एक ही भाव सर्वोच्च रहता है और वह है केवल अपने लिए व अपनों के लिये जीना। इसके अतिरिक्त हमारी आँख कभी कुछ और देखे न.. श्रवण कभी कुछ सुनें न.. मन बुद्धि अहं अन्य की माँग कभी भरें न.. मानव जन्म पाकर भी हमारा जीवन ऐसी अमानवता से भरा है जिस में अन्य व्यक्ति का कोई महत्त्व ही नहीं।

शास्त्रों में कहा है कि यज्ञ, तप, दान तो मनीषीगण को भी पावन करते हैं - साधारण स्वार्थी जनों का तो कहना ही क्या!

शास्त्र कथित यज्ञमय जीवन की नींव वह दृष्टिकोण है जिस के द्वारा 'मैं' पर अर्पण की अपेक्षा दूसरों पर समर्पण हो। हर स्वार्थी और सकामी पुरुष, अपने काज की भाँति ही दूसरों के काज सँवारे। इसे साधारण भाषा में कहें तो दूसरे की स्थापति तथा दूसरे की चाहपूर्ति अर्थ हमें कर्त्तव्य करने हैं। अपनी चाह, संग और मोह की आहुति दे कर विविध योग्यताओं, क्षमताओं और सामर्थ सहित अपना तन दूसरों के हेतु समर्पित करना है। मानो, वह सब अपने ही हों। ऐसा करने के लिये अपनी रुचि को उल्लांघ कर कर्त्तव्य कर्म संभालने होंगे। यदि जीवन में क्षमा, दया, करुणा के भाव प्रधान होंगे तो यह भी याद नहीं रहेगा कि किस कार्य राही अपनी हानि या अपमान हो सकता है।

इस बदले हुए दृष्टिकोण से जीने के परिणामस्वरूप एक अनूठे से संतोष का अनुभव होगा। निष्काम कर्म द्वारा मनोचंचलता का वेग कम होता है, चित्त की पावनता बढ़ती है तथा समत्व का अभ्यास आरम्भ होता है और कई दैवी गुण प्रदुर होते हैं। यह मनो शांति पा कर जीव स्वतः ही अचंभित होने लगता है कि क्या अपने व्यक्तित्व को दूसरों से बाँटने का परिणाम इतना सुखमय है? इसी अमृत के प्रसाद को शास्त्रों ने यज्ञशेष का नाम दिया है।

यज्ञशेष

समर्पित क्या हुआ, जब परिणाम में उस से अधिक मिल गया? स्थूल धन दिया, तो परिणामस्वरूप सूक्ष्म में प्रेम व आनन्द पाया। औरों के आँसू पोंछने लग गए तो अपने दुःख सभी भूल ही गए और मन

सुखी हो गया। यज्ञमय कर्मों से करुणा, दया, क्षमा रूपा अन्न प्राप्त हुआ। तितीक्षा, सहिष्णुता, गंभीरता आदि इस अन्न के सहज अंग हैं। आनन्द, शांति, सुहृदयता, मैत्री, प्रेम इत्यादि यज्ञशेष की सहज सुगंध है। इन गुणों की शक्तियाँ निष्काम कर्म से नवीन पुष्टि पा देवत्व की ओर बढ़ती हैं।

शनैः शनैः निर्द्वंद्व, निर्लिप्त, निरासक्त, मोह रहित, समदर्शी हो कर जीव इस महा प्रसाद का रसास्वादन करते हैं। निज तन के प्रति उदासीन हो कर जब वे देहात्म बुद्धि त्याग कर आत्मा में रमण करने लगते हैं तो सम्पूर्ण पापों से छूट जाते हैं। यही प्रसाद भगवान का चरणामृत कहलाता है। दैवी गुण संपन्न होने पर तनत्व भाव का अभाव होने लगता है। 'उदासीनवत् आसीन' मन गुणातीत अवस्था प्राप्त कर निर्मोह और निरासक्त हो, समत्व भाव पा कर नित्य तृप्त हो जाता है और आनन्द में बैठ जाता है।

यज्ञ कर्म-जन्य है

तन, मन, बुद्धि ही इस यज्ञ की सामग्री है जो जग रूपी हवन कुंड में अर्पित की जाती है। जीव में कर्ता भाव भी है, भोक्ता भाव भी है; देहात्म बुद्धि अहं, चाह, मनो संग सभी हैं। त्रिगुणात्मिका शक्ति रचित तनो पिंड राही यह सब स्वतः प्रवाहित होते हैं। रेखा बधित सब गुण बधे ही हैं। यज्ञ ही वह माध्यम है जिस द्वारा इन सब गुणों को दूसरों के प्रति बहाना है- दूसरों के सुख कारण लुटाना है। देने का नाम ही यज्ञ है। यहाँ आहुति अपने आप की देनी है। अपना तन ही निष्काम कर्मी होगा। अपना मन ही दैवी गुणों का निष्काम उपासक होगा। अपना अहंकार ही अपनी 'मैं' की हस्ती तथा अस्तित्व को भूल कर दूसरे के भले के लिये श्रेय कार्य में लगेगा। यही वह अमृत बूंद दिलायेगा, जिसके आचमन से आत्म विस्मृति होती है और भगवान आग़ोश में स्थान मिल सकता है। उस स्वरूप को पाकर राग, भय, क्रोध सभी निष्प्रयोजन हो जाते हैं।

सर्वभूतहितेरतः

यदि हम साक्षी रूप में भगवान को अपने अंग संग रखें तो सभी कर्म स्वतः ही यज्ञमय हो जायेंगे। तब जीव वही करेगा जो यदि भगवान उस परिस्थिति में होते तो करते। भगवान का दृष्टिकोण कभी व्यक्तिगतता में सीमित नहीं हो पायेगा। वह तो 'सर्वभूतहितेरतः' है।

जीव जब यह जानेगा कि सभी जनों का हित किस में है, तो अपना जीवन उसी राह पर चलाना चाहेगा। वहाँ अपना व्यक्तित्व तुच्छ सा लगने लगेगा। अपने सम्पूर्ण कर्मों में सर्वारंभपरित्यागी हो कर, दूसरों के काज सँवारने में वह अपनी पूर्ण शक्ति लगा देगा।

दिनचर्या में व्यवहार

शास्त्रों राही सच्चा ज्ञान मिला, परन्तु उस ज्ञान को यदि विज्ञान में परिणत नहीं किया तो सारा एकत्रित किया हुआ ज्ञान व्यर्थ ही है। पूर्ण जीवन को यज्ञमय बनाने हेतु ही यह ज्ञान हमारा पथ प्रदर्शक बनता है। हर गुण और स्वभाव में बँधे व्यक्ति को उसकी समझ के अनुकूल राह दिखाता है। मनोवृत्तियाँ ही वह लकड़ी हैं जो जग रूप हवन कुंड में डाली जाती हैं। उन का तप यानि तपिश ही उसे यह बताती है 'भगवान तू ही तू मैं नहीं। मेरा किया कछु न हो।' साधक पल पल पर यही प्रार्थना लिये जीता है। वह हर कर्म कर्तव्य रूप में निभाता है, हर परिस्थिति को 'तेरा भाणा मीठा लागे' कह कर शिरोधार्य करता है।

इस प्रकार उसके मनो कर्म पावन होने लगते हैं। मन शांत हो जाता है और संस्काराशय शुष्क होना आरम्भ हो जाता है। उसे पूर्ण जग भगवान की लीला दिखने लगती है। यानि साधक की दृष्टि 'मैं' से उठ कर स्वरूप में टिकने लगती है। इस प्रकार समर्पित जीव समष्टिगतता को प्राप्त हो जाता है। 'मैं' ही तो इक बाधा है जिस ने स्वरूप से बिछुड़न करवाया है।

यदि मोह और काम की बेड़ियाँ राह से हट जाएं तो जो मिला सो मिल गया, फिर जीव को सर झुका कर हर परिस्थिति का स्वागत करना सहज हो जायेगा। फिर निरन्तर कर्त्तव्य निभाव ही उसकी जीवन प्रणाली बन जायेगी।

इस यज्ञ में शेष केवल अमृत ही प्रसाद रूप में प्राप्त होगा जिस में अहं भरी सब मनोवृत्तियाँ एक-एक करके डूब जायेंगी। यह महा पावनी कर्म प्रवाह बाह्यप्रज्ञता के प्रति उदासीन हो जायेगा। यज्ञशेष के हर ग्रास की महिमा अपरंपार है। जितना कहें उतना ही कम है। यह तो मानो भगवान के अपने भोजन की परोसी हुई थाली में से ही एक ग्रास की चोरी है।

यहाँ अर्पणा में परम पूज्य माँ की छत्रछाया में रह कर हमें जीवन में जो पदचिन्ह प्राप्त होते हैं, उन को देख कर तथा अनुभव कर के हम केवल अपने भाग्य को ही सराह सकते हैं। दैवी देन परम पूज्य माँ को पा कर धन्य-धन्य कह कर केवल सर ही झुका सकते हैं, जिन्होंने हमें वास्तव में जीना सिखाया। अन्यथा जीवन व्यर्थ ही चला जाता। ❖

अर्पणा समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
दिसम्बर 2024

अर्पणा आश्रम

'उर्वशी'- परम पूज्य माँ से प्राप्त दिव्य विरासत

परम पूज्य माँ ने अपनी भक्ति की प्रखरता के माध्यम से मानव जाति को दिव्य ज्ञान का सर्वोच्च उपहार - 'उर्वशी' प्रदान किया।

2 अक्तूबर 1958 को, परम पूज्य माँ के मुखारविन्द से दिव्य ज्ञान का एक सहज स्वतः स्फुरित प्रवाह आरम्भ हुआ, जिसे 'उर्वशी' नाम दिया गया।

पूज्य माँ द्वारा प्रवाहित यह दिव्य ज्ञान, जिसमें श्रीमद्भगवद्गीता, प्रमुख उपनिषद, जपुजी साहिब और अनगिनत ज्ञानवर्धक व्याख्याएँ हैं.. हमारी आंतरिक अशुद्धियों को दूर करने की क्षमता रखता है एवं जो हमें सत-चित-आनंद की ओर बढ़ने में सहायता करता है।

पूज्य छोटे माँ का जन्मदिवस

परम पूज्य माँ द्वारा प्रवाहित इस दिव्य ज्ञान 'उर्वशी' के लेखन का कार्य करने वाले पूज्य छोटे माँ का जन्मदिवस भी सौभाग्यवश इसी तिथि को ही होता है, जिस तिथि को 'उर्वशी' का प्रवाह आरम्भ हुआ..

पूज्य माँ के सहज रूप में बहे इस दिव्य ज्ञान को आरम्भ से ही छोटे माँ लेखनीबद्ध करने लग गये.. और लगभग पचास वर्षों तक इसके लेखन का अथक कार्य करते रहे.. जो आने वाली भावी पीढ़ियों के लिए एवं वास्तव में सम्पूर्ण मानवता के लिये एक वरदान है। पूज्य माँ की इस अद्भुत विरासत को संरक्षित करने के लिए इस उल्लेखनीय भक्त के हम सदैव ऋणी रहेंगे।

2 अक्तूबर 2024 को, अर्पणा द्वारा परिवार के सदस्य, भक्त, मित्र, ग्रामीण बन्धुओं और कर्मचारियों के साथ अर्पणा आश्रम के नए हॉल 'आशीर्वाद' में 'उर्वशी' दिवस मनाया गया।

श्री कृष्ण अरोड़ा ने, पूज्य माँ के 'उर्वशी' भजनों की सुमधुर भक्तिपूर्ण प्रस्तुति में उर्वशी ललित कला अकादमी के सदस्यों का नेतृत्व किया।

अर्पणा अस्पताल

अर्पणा में उन्नत 'इको और अल्ट्रासाउंड मशीन' का उद्घाटन

14 सितंबर 2024 को, अर्पणा अस्पताल में एक नई उन्नत 'इको और अल्ट्रासाउंड मशीन' का उद्घाटन किया गया, जिसे 'एलआईसी फाउंडेशन' द्वारा उदारतापूर्वक दान में दिया गया।

एलआईसी के क्षेत्रीय प्रबंधक, श्री मनोज अत्रिशी एवं अन्य वरिष्ठ अधिकारी, अर्पणा के प्रबंधन के साथ इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

ट्रस्टी, श्री रविन्दर दयाल ने हृदय से आभार व्यक्त किया, जिसमें निदान सटीकता को बढ़ाने और रोग की जाँच के लिये उन्नत अल्ट्रासाउंड मशीन की भूमिका पर बल दिया गया।

अर्पणा अस्पताल की वर्षगांठ - सेवा और समर्पण को श्रद्धांजलि

अर्पणा ने 2 अक्तूबर को, ट्रस्ट के सभी सदस्यों, अर्पणा प्रबंधन, सलाहकारों और सभी कर्मचारियों के साथ अर्पणा अस्पताल की 44वीं वर्षगांठ का हर्षोल्लास से समारोह मनाया।

इस दिन अर्पणा द्वारा 25 वर्षों की समर्पित सेवा के लिए दो कर्मचारियों को सम्मानित किया गया और 29 चिकित्सा अधिकारियों, नर्सों और अर्पणा के अन्य कर्मचारियों को विशेष प्रशंसा पुरस्कार और प्रमाणपत्र प्रदान किये गये।

डॉ. सुवेन्दु शेखर पांडा, श्रीमती सीमा रानी और श्री संदीप चौहान को एनएबीएच गोल्ड अवार्ड से सम्मानित किया गया

अर्पणा अस्पताल को दिए गए सहयोग के लिए, मुंबई स्थित एलआईसी फाउंडेशन को उन्नत उपकरणों एवं नई दिल्ली से एमएल नंदा को आपातकालीन सुविधाओं के उन्नयन के लिए हार्दिक आभार!

हरियाणा सशक्तिकरण कार्यक्रम

स्वयं सहायता समूह की महिलाओं द्वारा सामुदायिक कार्य

जैसे-जैसे मलेरिया, चिकनगुनिया और डेंगू जैसी जलजनित बीमारियाँ बढ़ने लगीं, अर्पणा के स्वयं सहायता समूह की महिलाओं ने इनसे निपटने के लिए निम्नलिखित क़दम उठाए, जैसे:

- घरेलू स्वच्छता पर नाटक किये गये
- सार्वजनिक जल आपूर्ति की जाँच
- पड़ोस के कूलरों की जाँच
- खड़े पानी पर तेल का छिड़काव

स्वयं सहायता समूहों के लिए अन्य महत्वपूर्ण क़दम उठाये गये:

- जैसे, डिजिटल प्रशिक्षण, ऑनलाइन बैंकिंग, भुगतान एवं ज़ूम मीटिंग इत्यादि।
- नए स्वयं सहायता समूहों का गठन भी किया जा रहा है।

दिल्ली शिक्षा कार्यक्रम

अर्पणा शिक्षा केंद्र, मोलरबंद

अर्पणा ट्रस्ट द्वारा झुग्गी पुनर्वास कॉलोनियों के लगभग 1400 बच्चों की सहायता की जाती है, गुणवत्तापूर्ण ट्यूशन से शैक्षिक सहायता एवं उनके समग्र व्यक्तित्व विकास को बढ़ावा दिया जाता है।

अंकित यादव नर्सरी कक्षा में अर्पणा में शामिल हुए। उनकी उपलब्धियाँ - CBSE में 74.8% और CUET में 500 अंक - अर्पणा से मिले मार्गदर्शन को दर्शाती हैं। अर्पणा के सहयोग से, उन्होंने शहीद भगत सिंह कॉलेज में बी.कॉम प्रोग्राम के लिए प्रवेश प्राप्त किया, जो उनके जीवन में एक रोमांचक नया अध्याय था। वे कहते हैं, "अर्पणा मेरा दूसरा परिवार है.. जिन्होंने मुझे शैक्षणिक और व्यक्तिगत रूप से समर्थन प्रदान किया, खासकर मेरे पिता के निधन के बाद.. मेरे सपनों को पूरा करने में मेरी सहायता करने के लिए धन्यवाद।"

वसंत विहार के 'रिजॉइस' में 'ज्ञान आरंभ'

वसंत विहार में अर्पणा के शैक्षणिक कार्यक्रम में 120 वंचित छात्र सम्मिलित हुए।

- 13 नवंबर को 35 योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की गई।
- सुंदर दीये और कार्ड बनाने के लिए छात्रों को सम्मानित किया गया।
- 4 छात्रों ने अक्तूबर में कंप्यूटर कोर्स पास किया और उन्हें जल्द ही इसके लिये प्रमाणपत्र प्रदान किये जायेंगे।

अर्पणा की वार्षिक दिवाली हस्तशिल्प बिक्री (सेल)

अर्पणा हस्तशिल्प वार्षिक बिक्री (सेल) 17-19 अक्तूबर तक आयोजित की गई, जिसमें हरियाणा की ग्रामीण महिलाओं द्वारा तैयार किए गए बेहतरीन बैड लिनेन, खूबसूरत तौलिये, नाइटवियर और बच्चों के कपड़े प्रदर्शित किए गए।

अर्पणा उन सभी का हार्दिक आभार व्यक्त करता है जिन्होंने इस यज्ञ को सफल बनाने में योगदान दिया, विशेष रूप से गुप्ता परिवार- डॉ. राज गुप्ता, डॉ. लीना गुप्ता और डॉ. राहुल गुप्ता - जिनके समर्पित प्रयासों से यह आयोजन सफल हुआ।

यह बिक्री (सेल) ई-22 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली में आयोजित की गई.. जहाँ अर्पणा द्वारा हस्तशिल्प की खूबसूरत वस्तुओं के विपणन के लिए एक दुकान, **'डिवोशन'** स्थापित की गई है। यह सप्ताह के सातों दिन, सुबह 10 बजे से शाम 7 बजे तक खुली रहती है।

हिमाचल प्रदेश कार्यक्रम

हिमाचल प्रदेश में अर्पणा द्वारा निःशुल्क चिकित्सा शिविर

तिब्बती कॉलोनी में मरीज़

अपर बकरोटा में अर्पणा मेडिकल सेंटर, बैज नाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट के सहयोग से, चंबा के दूरदराज़ के गाँवों के साथ-साथ डलहौज़ी की तिब्बती कॉलोनी में ग्रामीण लोगों के लिए निःशुल्क चिकित्सा शिविर आयोजित किया जाता है। डॉ. मगोत्रा और उनकी टीम ने उच्च रक्तचाप, मधुमेह, संक्रमण, एनीमिया आदि जैसी स्थितियों के लिए निःशुल्क परामर्श, रक्त परीक्षण एवं दवाइयाँ प्रदान कीं।

निःशुल्क चिकित्सा शिविर:

1. **28 सितंबर**: सच पास, सतरुंडी और रानीकोट में 45 मरीज़।
2. **29 सितंबर:** नकरोड़ में 90 मरीज़।
3. **6 अक्टूबर:** तलाई गाँव में 90 मरीज़।
4. **27 अक्टूबर:** लक्कड़मंडी में 120 मरीज़, 50 रक्त शर्करा परीक्षण।
5. **10 नवंबर:** डलहौज़ी की तिब्बती कॉलोनी में 120 रोगियों का परीक्षण किया गया, 82 रक्त शर्करा परीक्षण।

अर्पणा, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में अर्पणा के स्वास्थ्य और विकास कार्यक्रमों में सहयोग करने के लिए श्री रविन्द्र बहल, श्रीमती सुषमा अग्रवाल और बैज नाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट (सभी नई दिल्ली से) एवं ऑर्बिस फाइनेंशियल कॉर्प लिमिटेड (गुरुग्राम) के प्रति अत्यन्त आभारी है।

EMPOWER VULNERABLE WOMEN AND CHILDREN AS THEY REACH FOR THEIR DREAMS!

ARPANA TRUST

EDUCATION FOR DISADVANTAGED CHILDREN

- Tuition support for classes 1-12 pre-school Classes for toddlers, cultural activities.
- Vocational training classes.

HUMANE VALUES FOR AN EQUITABLE SOCIETY

- Dramas, Publication, Satsangs
- Charitable grants for the vulnerable
- Health/Socio economic assistance

DONATE ONLINE

ARPANA RESEARCH & CHARITIES TRUST

PROVIDES MODERN HEALTH CARE THROUGH

- Arpana Hospital for free /affordable health care.
- Arpana Medical centre, Himachal

EMPOWERING WOMEN

- Self Help Group & SHG Federations.
- Micro – Credit, Income generation, community development

EMPOWERING THE DIFFERENTLY ABLED

- Differently Abled Persons Organizations for health, assistive devices, certifications and income generation.

DONATE ONLINE

DONATIONS TO ARPANA ARE 50% TAX EXEMPT UNDER SECTION 80G, INCOME TAX ACT 1961

Cheques in favour of Arpana Trust to be sent to:
Information & Resources Department
Arpana, Madhuban, Karnal- 132037, Haryana
Email: arct@arpana.org | at@arpana.org

Donations through Direct Bank Remittance:
Bank of India, Karnal (IFSC Code: BKID0006750)
Arpana Research & Charities Trust; Bank Account No. 675010100100014,
Arpana Trust Bank Account No. 675010100100001

FOREIGN DONATIONS TO ARPANA TRUST ARE 100% TAX EXEMPT WHEN SENT THROUGH:

Arpana Canada
Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton,
Ontario L6Y 359 Canada
Email: suebhanot@rogers.com

India Development & Relief Fund (IDRF)
Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive,
North Bethesda, MD 20852 USA
E mail: vinod@idrf.org

Contact Us: Harishwar Dayal, Executive Director +91 98186 00644
Aruna Dayal, Director Development +91 99916 87310

Email us: arct@arpana.org | at@arpana.org
Websites www.arpana.org www.arpanaservices.org